Bodhi-Path Year 2020 July Issue Volume 19 Page No 79-90

बौद्ध धर्म में दान : समीक्षात्मक अवलोकन

डा0 चन्द्रशेखर पासवान

सहायक प्रोफेसर

गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय,

ग्रेटर नोएडा, यू.पी

विश्व के इतिहास में छठी शताब्दी ई. पू. धार्मिक सामाजिक उथल– पुथल के क्षेत्र में एक नये युग का अरूणोदय काल माना जाता है। भारत सहित विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में इस समय अनेक नये धर्मों का उदय हुआ, जिसने लोगों की सामाजिक और धार्मिक स्थिति को परिवर्तित किया। इस समय भारत में अनेक नये धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ जिसमें महावीर द्वारा प्रतिपादित जैन धर्म और गौतम बुद्ध द्वारा प्रतिपादित बौद्ध धर्म प्रमुख है। छठी शताब्दी ई.पू. में उत्तर भारत के मुख्य गंगाघाटी में पुरातन जीवन–शैली एवं दर्शन के विरुद्ध अनेक नवीन धार्मिक सम्प्रदायों में केवल जैन और बौद्ध धर्म ने ही प्राचीन भारतीय संस्कृति को गहराई से प्रभावित किया।इन दोनों धर्मों को त्याग तथा वैराग्य प्रधान जीवन के वैदिक यज्ञवाद के विरुद्ध स्थापित किया गया। बुद्ध एवं तत्कालीन हिन्दू धार्मिक तथा दार्शनिक सिद्धान्तों के बीच उपस्थित मतभेदों के विषय थे– जाति विभाजन, जाति अभिमान, वेदो की ऐकान्तिक प्रामणिकता एवं यज्ञों को स्थापित महत्ता। किन्तु भारतीय समाज बुद्ध के प्रयासों के काफी बाद तक अपरिवर्तित–सा रहा क्योंकि जातक कहानिंयों में जातीय गौरव एवं अनेक जातिगत विशेषताओं की सामाजिक वास्तविकता का दिग्दर्शन मिलता है। बुद्ध मानवीयता, मैत्री, नैतिकता के पूँज स्त्रोत थे। उसने जनसामान्य के दुख से दुःखी होकर गृह त्याग किया और बोधि प्राप्ति के बाद भी व्यक्तिगत सुख से उपर उठ कर मानव कल्याण में अपने जीवन को लगा दिया। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए संघ को स्थापित करते हुए बुद्ध ने कहा – चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय लोकानुकंपाय अत्थाय हिताय देवमनुस्सानं ति।

हे भिक्षुओं जनमानस के हित के लिए और सुख तथा लोककल्याण के लिए संसार पर अनुकम्पा कर देवताओं सहित मनुष्य के हित के लिए विहार करो। बुद्धोपदेशित धर्म इतने सरल थे कि सामान्यजन आसानी से समझ सके। बुद्ध ने अपने धर्म प्रचार के लिए लोक भाषा का प्रयोग किया। उसका धर्म व्यवहारिकता पर आधरित था। वे कहते थे कि किसी बात पर तभी विश्वास करना चाहिए जब तक कि उस बात को स्वयं न जान लो या अनुभव न कर लो। वे वर्तमान जन्म को ही अपने कुशल कर्मों से सन्निहित करने तथा अकुशल कर्मों से विमुक्ति का आदेश लोगों को देते थे। उन्होंने धम्मपद में कहा – ‘‘सब पापस्स अकारणं कुसलस्य उपसम्पदा। संचित परियोदपनं एवं बुद्धान सासनं।’’ उसने लोगों को कर्मवादी बनाया। उनका कहना था कि अपने आप स्वयं का दीपक बनो –अन्त दीपो भव।

बुद्ध काल में उत्तर भारत के आर्थिक जीवन में उद्योगों व्यापारों एवं मुद्राओं के विकास के केन्द्र के रूप में नगरों का प्रादुर्भाव तीव्र गति से प्रस्तुत होता हुआ दिखाई पड़ता है। गंगाघाटी की अर्थव्यवस्था की दृष्टि से श्रावस्ती, चम्प राजगृह अयोध्या काशी आदि कुछ नगर अधिक महत्त्वपूर्ण बन गये थे। द्वितीय नगरीयकरण और नवीन धार्मिक आन्दोलनलों तथा स्वराज्य चिन्तन के इस वातावरण में यज्ञपरक वैदिक प्रवृत्तिमार्ग को धार्मिक एवं सामाजिक आयाम प्रदान करने के उद्देश्य सं सृजित किये गये समयाचारिक धर्म के का अद्वितीय महत्त्व है। इसी प्रकार बौद्ध तथा समयाचारिक धर्म के सन्दभों में दान की अवधारणा का अद्वितीय महत्त्व है।

दान

बौद्ध–शास्त्रों में दान की बड़ी महिमा की गई है और विविध दानों का वर्णन है। दान का अर्थ है देना अर्थात् अपनी वस्तु का स्वत्व इच्छा, दान की वस्तु और दान का लेने वाला। सब कुछ होते हुए भी यदि दान करने की इच्छा न हो तो दान नहीं हो सकता, दान की इच्छा होते हुए भी यदि दान देने के लिए कोई वस्तु अपने पास नहीं है तो भी दान नहीं हो सकता और यदि दान करने की इच्छा भी है और दान करने के लिए वस्तु भी है लेकिन यदि कोई दान ग्रहण करने वाला न हो तो भी दान नहीं हो सकता। पालि साहित्य में दान को धम्मदान और आमिषदान की दो कोटियों में बाँटा गया है, जिसमें धम्मदान का अर्थ है धम्म अथवा बौद्ध धर्म के उपदेशों का दान तथा आमिषदान का अभिप्राय है, उपभोग्य वस्तुओं का दान। ये दोनों विभाजन सम्भवतः बौद्ध भिक्षु एवं उपासक के बीच होने वाले धम्मोपदेश तथा उपभोग्य वस्तुओं के आदान–प्रदान के अर्थ में भी प्रयुक्त किये गये हैं।

उद्देश्य

दान की कोई भी गतिविधि पूर्णतया उद्देश्यविहीन नहीं होती। अतः विविध प्रकार के दानों से वर्गीकृत किया जा सकता है। दान के पीछे मोटे तौर पर दो प्रकार के उद्देश्य दिखाई देते है घोषित उद्देश्य और दूसरा अन्तर्निहित उद्देश्य। दान के स्पष्ट अथवा घोषित उद्देश्यों की हमारे प्राचीन ग्रन्थों और दानात्मक अभिलेखों में चर्चा भी हुई है।अंगुत्तर निकाय में दान के पीछे वर्तमान आठ उद्देश्य को स्पष्ट किया गया है। मिलिन्दपह्व में यह बताते हुए देखा जा सकता कि वेसन्तर नामक राजा सम्बोधि के उद्देश्य से दान देता था, दान के सम्भावित अन्य उद्देश्यों को नकारा गया है। नकारे गये उद्देश्य हैं– बेहतर पुनर्जन्त, आर्थिक लाभ, बदले में प्राप्त होने वाले उपहार, कूटनीतिक लाभ, प्राणिमात्र की प्रसन्नता का लाभ जैसे कितने ही उद्देश्य महाभारत, स्मृतियों, पुराणों तथा अभिलेखों में स्थान–स्थान पर उल्लेख को प्राप्त हुए हैं। दानों के फल कथन में भी उद्देश्य दिखाई देते हैं और उद्देश्यों के अनुसार फलों को कई वर्गो में बाँटा जा सकता है। जैसे पाप पूर्नमुक्ति का आश्वासन देने वाले फल, लैकिक मनोकामनाओं की पूर्ति और आध्यात्मिक पुण्य का आश्वासन देने वाले फल सम्भावित अनिष्ट की आशंका से मुक्ति दिलाने वाले फल आदि। फलों के इन कोटियों के अनुसार दान की कोटियाँ भी निर्धारित की जा सकती हैं। दान के अन्तर्निहित किन्तु अघोषित उद्देश्य दान के उस व्यावहारिक रूप को समझाने से सहायता करते हैं, जिसका दाता या तो वासविक उद्देश्यों को जिसमें दान की धार्मिक गतिविधि का उपयोग राजनीतिक या किसी अन्य अन्तर्निहित उद्देश्य से किया जाता है।

बौद्धसंघ में संघगत दान – दक्षिणा –

बौद्ध धर्म में संघगत दान या दक्षिणा[1] का सात प्रकार का वर्गीकरण किया गया है, जिनमें निम्न प्रकार बांटा गया है–

i जो दान – दक्षिणा बुद्ध प्रमुख भिक्षु और भिक्षुणी संघ को दिया जाता है – यह एक प्रकार की पहली संघगत दान दक्षिणा माना गया है।[2]

ii बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद दोनों संघों को दान दक्षिणा देना दूसरी माना गया है।

iii केवल भिक्षुसंघ को दान दक्षिणा देना तीसरी माना गया है।

iv केवल भिक्षुणीसंघ को दान दक्षिणा देना चौथी माना गया है।

v गणना के अनुसार संघ में इतने भिक्षुओं के लिए, या इतनी भिक्षुणीयों को दान दक्षिणा दिया जाता है– पांचवी प्रकार माना गया है।

vi गणना के अनुसार भिक्षुसंघ में इतने भिक्षुक या अमुक – अमुक भिक्षुओं को दान दक्षिणा दिया जाता है, छठी प्रकार माना गया है।

vii भिक्षुणी संघ में इतनी भिक्षुणीयों को या अमुक – अमुक भिक्षुणी को दान दक्षिणा दिया जाता है – सातवी प्रकार का दान दक्षिणा माना गया है।

एक समय तथागत बुद्ध राजग्रह के गृध्रकूट पर्वत पर विहार कर रहे थे।[3] वही एक माघ नाम का माणवक आया और बुद्ध से कहा, मैं दायक हूं, दानपति हूं, मैं याचना करने वालो को कुछ देने योग्य हूं, धर्म से धन कमाता हूं, धर्म से धन कमा कर, धर्म से प्राप्त, धर्म से हस्तगत धन से एक को देता हूं, दो को देता हूं, सैकडों को देता हूं, प्रत्येक चहाने वालो को देता हूं। हे गौतम जो याचना करने योग्य दानपति गृहस्थ पुण्य को चाहते है, पुण्य की आकांक्षा से दान देता है, जो दूसरे को अन्न, पेय पदार्थ दान करता है, ऐसे व्यक्ति जो दक्षिणा योग्य है उसके बारे में बताय[4] – (ददं परेसं इध अन्नपानं, अक्खाहि में भगवा दक्खिणेय्ये) बुद्ध कहते है जो व्यक्ति (ब्राहम्ण) पुण्य की कामना से दान देता है, जो याचना करने योग्य, दानपति गृहस्थ पुण्य को

[1]मज्झिम निकाय, दक्षिणाविभंग सुत्त,3/5/4/42
[2] वही, 3/5/4/42

[3] सुत्त निपात – 3/5/5

[4] वही, 3/5/3

चाहता है, पुण्य की आकांक्षा करता है, जहां दूसरे को अन्न, वस्त्र, पेय देता है उसे चाहिए कि वह ज्ञानी, प्रबुद्ध, विद्वानों को दक्षिणेय प्रशन्न करें।[5]

यह बताया गया है कि – जो ब्राहम्ण पुण्य की कामना से दान देता है उसे चाहिए समयानुसार उन्हें हव्य का दान करें जो कि अनाशक्त हो, जो अकिंचन, ज्ञानी, संयमी हो विमुक्त, निष्पाप, तृष्णारहित सारे संसारिक बन्धनों से मुक्त, राग द्वेष, मोह को त्याग कर क्षीणास्रव हो गया हो, जिन्होनें ब्रहमचर्यवास को पूर्ण कर लिया हो, जिनमें न माया हो, न अभिमान हो, जो लोभ रहित, ममत्व से दूर, तृष्णा का नाश कर दिया हो, जो काम भोगों को त्याग कर अनागारिक ; घर द्वार त्याग कर संयमी होकर विचरण करता हो, वासना रहित, राग रहित, क्रोध त्याग दिया हो, जो ज्ञानी है, ध्यान में रत है, स्मृतिवान है, प्रसावान है, सम्बोधि प्राप्त है ऐसा व्यक्ति दान – दक्षिणा योग्य होता है।[6]

दान के प्रकार

दान तीन प्रकार के है– धर्म दान, अभयदान और आभिष दान अर्थात् वस्तु दान। जिसके धारण करने से मनुष्य अपने दुःखों की अत्यन्त वस्तु दान। जिसके धारण करने से मनुष्य अपने दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति कर सकता है, उसे धर्म कहते हैं। उस धर्म का उपदेश करना या प्रचार करना धर्म दान कहलाता है। पीड़ित दुखित अनाथों और भयभीतों को शान्ति और आश्रय देना तथा रक्षा करना अभय वस्तुओं का दान के अधिकारियों को दान करना आमिष दान कहलाता है।

दान देने वाले तीन प्रकार के होते हैंः दानदास, दान सहाय और दानपति। जो स्वयं अच्दी वस्तुओं का व्यवहार करते है, किन्तु दूसरों को देने के लिए सस्ते के लोभ से खराब वस्तुओं का दान देते है ऐसे दाता को दानदास कहते हैं। जो लाग स्वयं अपने लिए जैसी वस्तओं को व्यवहार में लाते है, दूसरों को भी ठीक वैसी ही वस्तुओं का दान करते हैं, ऐसे लोगों का दान सहाय कहते हैं। जो मनुष्य अपने निर्वाह के लिए चाहे जैसी वस्तु व्यवहार में लाते हों परन्तु दूसरों के लिए उत्तम वस्तु दान करते हैं, ऐसे लोगों को दानपति कहते है।

दानकर्ता

सत्पुरूष/दान दाता–

---

[5] वही – 3/5/2 यो याचयोगे दानपति गहटठो पुत्रत्रपेक्खो।
दद परेसं इध अन्नपानं, कथं हुत यजमानस्स सुज्मे ।
आराधमे दक्षिणेय्ये हि तादि।

[6] वही, 3/5/3

सत्पुरूष[7] व्यक्ति के बारे में बुद्ध का कथन है कि जो व्यक्ति सद्धर्मसमन्वित होता है। सत्पुरूष भक्तिभाव युक्त होता है। सत्पुरूष चित्त, सत्पुरूष वाक्, सत्पुरूष कर्मान्त, सत्पुरूषदृष्टि वाला होता है जो दान देते वक्त सत्पुरूष को ही दान देता है। इसमें सद्धर्म समन्वित वह होता है जो पुरूष श्रद्धावान, लज्जालु, (सन्तोषी, उधोत) बहुश्रुत, उपस्थित स्मृति, प्रज्ञावान वह सत्पुरूष भक्ति कहलाता है। इसी प्रकार अष्टांगिक मार्ग के अनुरूप दृष्टि वाला हो। जिस सत्पुरूष की धारणा– दान पुण्य है, यज्ञ है, हवन है, वह सुकृत – दुष्कृत दोनों कर्मों के फलों को जानता है। वह लोक–परलोक, देव, ब्राहम्ण, श्रवण की तरह स्वयं साक्षात्कार कर दूसरे को उपदेश करते है, ऐसी दृष्टि वाला व्यक्ति सत्पुरूष वाला होता है। ऐसा ही व्यक्ति सत्पुरूष दानी कहलाता है, क्योंकि ऐसा व्यक्ति अपने हाथ से स्वयं अर्जित धन को समाज के हर व्यक्ति का ध्यान रखते हुए उत्कृष्ट दान देता है। इसी के विपरीत आचरणवाला असत्पुरूष कहलाता है।

अंगुत्तर निकाय के अट्ठक निपात में सत्पुरुष दान कर्ता के भाव का वर्णन किया गया है, जो आठ अंगों से युक्त होता है– ये है–

1. सत्पुरुष शुद्ध दान करता है।
2. श्रेष्ठ दान करता है।
3. समय से दान करता है।
4. उचित दान करता है।
5. विचार कर दान करता है।
6. अधिक मात्रा में दान करता है।
7. दान करते समय उसका चित्त प्रशन्न होता है।
8. दान देकर वह संतुष्ट होता है।

ये सभी सत्पुरुष दानकर्ता कहलाते है। इस प्रकार मुक्त चित्त से दान करता हुआ बुद्धिमान, श्रद्धालु, ज्ञानी पुरुष ही हानिरहित, सुखमय स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है। ऐसा उदाहरण सम्राट अशोक द्वारा वर्तमान पाकिस्तान प्रान्त के सहेववजगढ़ी से प्राप्त बुद्ध के भिक्षापात्र में वर्णन दिया गया है। जैसा की यथा सामर्थ्य अर्पण करने को परम्परा भारत में सदियों से रह है। इसमें भगवान भाव देखता है, भजन नहीं, उन्हें भक्ति की भावना रुपी अपेक्षा है, धन की नहीं। रोचक बात है कि यही बात उपरोक्त सहेवजगढ़ी अशोक के शिलालेख में वर्णित है।

विपुलेपिचू दानेस नास्ति समय भावसुधि किंचित निचें पढ़ं – अर्थात विपुल दान देने वाला व्यक्ति भी अत्यंत नीच है, यदि उनमें समय है, भावसुद्धि है, कृतज्ञता है।[8]परन्तु सीताराम दुवे लिखते है कि इस शब्द को यथावत नहीं लेना चाहिए कि गरीबों के श्रद्धायुक्त एक दो फूल से पात्र भर जाता है, अमीरों के अधिक चढ़ाने पर नही भरता क्योंकि उसमें भावशुद्धि का अभाव है।[9] 1

---

[8] अंगुत्तर निकाय, 8/4/6, ;दुवे सीताराम,Jijnasa,Vol.XXI,-XXII,(2014-15), पृ0,120–21

7 मज्झिम निकाय,चूल्लपण्णासुतं,3/10/1-2

[9] दुवे सीताराम,Jijnasa,Vol.XXI,-XXII,(2014-15), पृ0,120–21

इस संबंध में बुद्ध पुन्यक्रियासूत्र (अंगुत्तर निकाय, अट्ठक वग्ग) में पुन्यक्रिया वस्तुओं में दनमय पूण्य क्रिया , शीलमय पूण्य क्रिया, भावनामय पूण्य क्रिया का वर्णन किया है जिसमें उन्होंने इस भवन से दान करने पर उत्तम जन्य और गति पता है उसका वर्णन किया है।

दान का पात्र

प्रतिग्राहिता[10]

(दान लेने वाला) – तीन अंग होते है –ः 1 दान के लेने वाला आशक्ति रहित (वीतराग) होता है।

(ii) द्वेष रहित होता है।

(iii) मोह रहित होता है।

इस प्रकार बुद्ध कहते है हे भिक्षुओं छः अंगों से युक्त दान के पुण्य की संख्या से वर्णन करना सम्भव नहीं है, ये दान इतना पूण्य और इतने काल तक फलदायी है। ये असम्भव बात है। उनके शब्दों में दान सुख की प्राप्ति है। इष्ट है, प्रिय है, पूण्य की एक असंख्य अप्रमेय विशाल राशि है। यह तो जिस तरह किसी समुद्र के जल को नापा या तोला नहीं जा सकता । समुद्र का जल राशि संख्या रहित अप्रमेय मानी जाती है, उसी प्रकार दान क्रिया का पुण्य का परिणाम नहीं बताया जा सकता। बुद्ध कहते है 1 जो व्यक्ति दान दे रहा है दृ उस दाता को मन में दान देने की प्रशन्नता हो, दान देते वक्त श्राद्धा हो, संतुष्ट हो, इसे दान यज्ञ की संपत्ति कहा गया है।[11] (पुब्बे दाना सुमेना,दद चित्त प्रसादिये । दाता अत्रमेंन्न हेति, एसा यननस्स संपदा)

उसे राग, द्वेष, मोह से रहित, इन्द्रिय संयमी, स्वयं धर्म साधक प्रतिग्रहिता इस दान यश का उपजाऊ भूमि है। स्वयं दान संकल्प हेतु आचमन, ध्यान कर स्वयं हार्थो से दान देकर दसन यश में अपने–दूसरे दोनों काफलदायी होता है। बुद्धिमान पुरुष श्रद्धापूर्वक, दोषयुक्त चित्त से प्रशन्न होकर दान करता है, और फल प्राप्त करता है।

प्रतिग्राहिता सुपात्र होना चाहिए, इन सुपात्रों के बारे में बुद्ध श्वेतसूत्र[12] में एक अच्छे खेत की उपमा देकर आठ अंगों से युक्त सुपात्र का वर्णन किया है। बुद्ध कहते है कि जो व्यक्ति खासकर श्रवण और ब्राह्मण आठ अंगों से युक्त हो उसे दान फल ज्यादा मिलता है, ऐसा उन्होनें सुपात्र व्यक्तियों के बारे में कहा है ये है सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक कर्म, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि वाले हो। जैसे अच्छे खेत में बोया हुआ बीज फलदायी स्वादयुक्त एवं स्वास्थ्यप्रद होता है। जिस खेत की भूमि ऊँची–नीची न होकर समतल हो, कंकर पत्थर न हो, गहरी हल चलता हो, जल आने जाने का मार्ग से संयुक्त हो, नालियां बनी हो, मेड बनी हो, ऐसा खेत ज्यादा उपयुक्त, फलदायक, स्वास्थ्यवर्धक होता है। इसमें बोई हुई बीज संपदा से उचित वर्षा होने पर धान्य संपदा होती है, वैपुल्ल संपदा होती है, भोजन संपदा प्राप्त होती है, शील सम्पन्न पुद्दगलों को दी गई भोजन संपदा दान फल में वृद्धि होती है। इच्छुक ग्रहस्थ को चाहिए कि संपत्ति अर्जन करने के बाद प्रज्ञा संपदा युक्त पुद्दगलों की सेवा करें जिसे संपत्ति में वृद्धि हो, विद्याचरण सम्पन्न पुद्दगलों की सेवा से चित्त संपदा प्राप्त कर कर्म संपदा को बढ़ाता रहे, जिसे अर्थ संपदा में वृद्धि होती है। दृष्टि संपदा के सहारे की यथार्थता जानकर मार्ग संपदा (मार्ग रुढ़ होकर) समाहित चित्त होकर निर्वाण को अधिगत कर लेता है तथा अपने

[10] वही – 6/4/7-3

[11] वही (धक्क निपातों) – 6/4/7-5

[12] अंगुत्तर निकाय 8/4/4-4 (अट्ठक निपातों)

समस्त चित्तफल को धोकर निर्वाण संपदा को प्राप्त कर जब साधक सभी दुखों से मुक्त हो जाता है, वह सर्वसम्पदा वाला कहलाता है।

दान देते वक्त ब्राह्मण या सनातन हिन्दू परम्परा के अनुरूप बौद्ध धर्म में दान दाता एवं दान ग्राहिता (दान प्राप्त करनेवाला) दोनों के चरित्र, भावना व्यक्तित्व आदि का वर्णन किया गया है। सुत्त पिटक के मज्झिमनिकाय (उपरिपष्णासंक) दक्षिणा विभागसुत्त में तथागत बुद्ध द्वारा वर्णन किया गया है।

बौद्ध दान के अंग

बौद्ध धर्म में बुद्ध ने छः अंगों से युक्त दान का वर्णन किया है।[13] एक समय बुद्ध श्रावस्ती के अनाथपिंडक द्वारा निर्मित जेतवनाराम (श्रावस्ती के जेतवन में आराम करने का स्थान)। इन आराम कर रहे थे। उस समय वेणुकण्टकी स्थान में नंदमाता (उपासिका) सारिपुत्र एवं महामो दलाय्यायन सहित भिक्षु संघ को कुछ दान कर रही थी। इसी समय बुद्ध ने दान के कितने अंग होते है, किस प्रकार का होता है उन्होंने भिक्षु संघ में वर्णन किया है। दान के ये छः अंगों में दाता के तीन अंग एवं प्रतिग्रहिता के तीन अंग होते है।

(i) दान देने वाला दाता को दान देने से पहले मन में सौम्यनस्य उत्पन्न होता है। (दायको पुब्वेव दाना सुमेना होति)

(ii) दान करता हुआ अपने में प्रतिग्राहक के प्रति मन में श्रद्धा रखता है।[14](दंद चित्तं पसादेति)

(iii) तथा दान देने में बाद उस दान क्रिया से प्रशन्न एवं सन्तुष्ट होती है।[15] (दत्वा अंतमनों होति) ये दाता के तीन अंग होते है।

दायक और दान–पात्र की योग्यता और अयोग्यता के कारण दान की विशुद्धता चार प्रकार की है–

1.दायक द्वारा दान–विशुद्धि, 2. दान–पात्र द्वारा दान की विशुद्धि,3. दायक और दान–पात्र दोनों द्वारा दान अशुद्धि तथा 4. दायक और दान–पात्र दोनों द्वारा दान की विशुद्धि।

अष्टविध दान– अंगुत्तरनिकाय[16] के अट्ठक निपात के दान वग्ग में प्रथम भगवान बुद्ध भिक्षु परिषद को दान के विषय में बताया कि हे भिक्षुओं दान अष्ठविध होते है। ये आठ कौन से है। इनमें –

1. जो दान आशक्ति पूर्वक किया जाता है।

2. भय पूर्वक किया जाता है।

---

[13] अंगुत्तर निकाय –छक्क निपातों 6/4/7–3

[14] अंगुत्तर निकाय –धक्क निपातों 6/4/7–3

[15] वही – 6/4/7/-3

[16] अंगुत्तर निकाय, 8/4 अट्ठक निपातों, दान वग्ग

3. कुछ दान ऐसा है जो पहले किसी ने दिया बदले में उसे भी दिया जाता है।

4. कुछ दान यह सोच कर दिया जाता है कि भविष्य में वह भी मुझें कभी देगा इस अपेक्षा से दान किया जाता है।

5. कुछ लोग दान देना अच्छा समझते है इस दृष्टि से दान करता है।

6. कुछ अन्नदान जैसे लोग श्रद्धा से करता है कि मेरे घर में भोजन बना है, मान ले पड़ोसी के, दूसरे भाइयों के घर में भोजन नही बना है, मन में श्राद्धा होती है कि मैं खा लूँगा, वह भूखा रह जाएगा, इस सोच कर वह दान करता है,

7. कुछ दान, यश प्राप्त करने, गुणगान करने के लिए करता है।

8. कुछ दान अपने मन को संतोष, प्रशन्नता प्रदान करने के लिए दान करता है, दान देति चित्रालनकर चित्रापरिकख्या रत्थं दान देति

बुद्ध कहते है, हे भिक्षुओं आठ प्रकार के दान होते है। अंगुत्तर निकाय में दान के पीछे वर्तमान आठ उद्देश्य को स्पष्ट किया गया है।

दान महाफल

दान कर्म अपने गुरुत्व के अनुसार तीन प्रकार के है– दृष्ट धर्म वेदनीय, परिपक्व वेदनीय और अपरापर्य वेदनीय। जो दान जिस अवस्था में किया जाए, वह उसी अवस्था में विपाक फल प्रदान करें, जैसा बाल्यावस्था में करने से वह दान अपना विपाक बाल्यावस्था में ही प्रदान करे और युवावस्था में करने से अपना विपाक युवावस्था में ही प्रदान करे और वृद्धावस्था में करने से अपना विपाक वृद्धावस्था में प्रदान करे। यह दृष्ट धर्म वेदनीय कहलाता है। जो दान–कर्म सात दिन के भीतर ही अपना विपाक फल प्रदान करे, यह परिपक्व वेदनीय कहलाता है। जो दान–कर्म भविष्य में जब अवकार्श पावे तभी अपना विपाक फल प्रदान करे, वह अपरापर्य वेदनीय कहलाता है।

एक समय भगवान बुद्ध चम्पा नगरी[17] के धगगरा पुष्पकरणी के पास साधनारत थे । वहीं एक उपासक आकर सारिपुत्र से आग्रह किया कि वे बुद्ध का उपदेश सुनना चाहता है, वही एक उपासक दान फल के बारे में प्रश्न करता है कि दो व्यक्ति दान करता है। एक को दान फल ज्यादा मिलता है, दूसरे को कम दान फल प्राप्त होता है। सारिपुत्र उपासक के इस कथन को बुद्ध के सामने रखता है जिसका उत्तर तथागत बुद्ध देते है और कहते है– कोई पुरुष किसी उपेक्षा (आशा) से दान करता है, या किसी कामना की पूर्ति मन में रख कर दान करता है, या कुछ प्राप्त करने के उद्देश्य से दान करता है या सोचता है, तब वह किसी ब्राह्मण, श्रवण, अनाथ, गरीब को दान– अन्न, पान, वस्त्र, यान, मलगन्ध, विलेपन, शय्या, प्रकाशयुक्त घर आदि दान करता है, वह कालक्षेप के बाद इस लोक में जन्म लेने पर ऋद्धि, बल, यश, ऐश्वर्य प्राप्त कर लेता है।

दूसरा दान कोई दाता न किसी उपेक्षा (आशा) से दान करता है, बल्कि दान करना अच्छा होता है, इसलिए दान करना है, यह भी नहीं सोचता। उसका उद्देश्य केवल इतना रहता है कि हमारे

[17] अंगुत्तर निकाय, सत्तकनिपातों, महादनफल सूत्र, सम्पदा, शास्त्री द्वारिकदास,वाराणसी,वर्ष 2002,पृ0,249–251

माता– पिता ऐसा दान करते आये है। यह मेरा प्राचीन कुल परम्परा है, इसे तोड़ना उचित नही, यह सोचकर दान करता है , वह केवल परम्परा का निर्वहन करता है, श्राद्धा से दान नही करता, उसका फल कम होता है।[18] ऐसी है उपदेश अंगुत्तर निकाय के सिंह समोंपति सूत्र में श्रद्धालू और अश्रद्धालु के बारे में वर्णन किया गया है, जो श्रद्धालु त्रिरत्न में विश्वाश करता हुआ श्रद्धापूर्वक दान करता है वह सुगति को पता है।[19] ये श्रद्धालू आर्य अष्टांगिक मार्ग का पालन करता है। इस प्रकार बुद्ध इन श्रद्धा रखनेवालों में आगे दृ आगे जो रहता है, वे चार अग्र श्रद्धावान होते है– अग्र में श्रद्धालुओं का , अग्र धर्म के ज्ञाताओं का, अद्वितीय दक्षिणायोग्य देने वाला वस्तु बुद्ध जैसे श्रद्धालुओं को, वैराग्य एवं शांति सुखदायक अग्रधर्म में श्रद्धालुओं का, अद्वितीय पुण्यभूमि रुपी बौद्ध संघ को दान दाता श्रद्धालु श्रद्धालुओं का पुण्य आगे आगे बढ़ता है। ऐसे श्रद्धालु का आयु, वर्ण, बल, यश,कीर्ति एवं सुख बढ़ते ही जाते है। जो बुद्धिमान अग्र (बौद्ध संघ) को दान देता है, तथा जो अग्र (बौद्ध संघ) में समाहित होता है, वह भले देव हो या मनुष्य, अपने समाज में ऊँच स्थान प्राप्त कर सुखमय जीवन बिताता है।[20]

बुद्ध ने भिक्षुओं को दान देने वाले और प्राप्त करने वाले दोनों को दान फल सुख के बारे में बताया है कि जिन दाता द्वारा दिये हुए चीवर, पिण्डपात, शयनसन , रोगों में हितकारी पथ्य एवं दवा (औषधि) का उपयोग करते है उनका वह दान अतिशय फलदायी तथा विशेष महत्त्व दायक हो, तथा हमारी यह प्रव्रज्या भी बहुत सफल एवं हमारे लिए उन्नतिकारक हो।[21]

ऐसे ही हे भिक्षुओं एक भिक्षु को जिसे आत्महित देखे बिना प्रमाद (अपरमदपूर्वक) सम्पादित करना चाहिए , जिसे परहित देखें उसे भी अपरमदपूर्वक करना चाहिए तथा जिसमें आत्महित और परहित देखें उसे भी अप्रमाद पूर्वक करना चाहिए । मनुष्यों की जीवन की सीमा बहुत अल्प, छोटी, बहुत दुख से भरी होती है, जिसे अपने प्रज्ञाबल से समझना चाहिए तथा कुशल कर्म करते हुए, धर्म साधना करना चाहिए क्योंकि जिसका जन्म हुआ है उसका मृत्यु निश्चित है, इसलिए अच्छे कर्म के द्वारा समाज, सृष्टि को कृतार्थ करने का प्रयत्नं करना चाहिए।

धम्म पद के तण्हावग्ग में दानफल की प्राप्ति राग, दोष, मोह से मुक्ति होने पर होती है, जिसका वर्णन किया गया है। जैसे कि –

तिणदोषानि खेत्रानि रागदोषा अयं पगा।

तस्मा हि वीतरागेसु दिभं होति महाफलं।।[22]

अर्थात खेतों में घास, तृण, दोष है, प्रजा का दोष राग है, इसलिए राग रहित व्यक्तियों के दान देने में महाफल होता है।1 इसी तरह खेतों का दोष तृण ,घास, है, व्यक्तियों में दोष उसका विद्वेष भावना है, जो व्यक्ति विद्वेष, छल,–कपट से दूर रहकर दान करता है उसका महाफल प्राप्त होता है –

दोषदोषा अयं पजा। तस्मा ही वीतदोसेसु दिन्न होति महाप्फलं।[23]

---

[18] वही पृ0 249–251

[19] वही पृ0 271–72

[20] वही, अंगुत्तर निकाय, चतुक्कनिपातों, प्रसादसूत्र,पृ0 50–51

[21] अंगुत्तर निकाय,सतककनिपातों,7/8/9

[22] धम्मपद,तण्हावग्ग–356/23

[23] वही,356/24

ऐसे ही प्रजा का दोष मोह ,ममता है, इसलिए मोह को त्याग कर दान देना महाफलदायक होता है।

इच्छादोषा अयं पजा। तस्मा हि विगतिच्छेसु दिन्नं होति महाप्फलं।[24]

धर्म का दान सभी दानों से बढकर है, धर्म, रस, सभी रसों में प्रबल है धर्म में रति सभी रतियों में प्रबल है, बढकर है, तृष्णा का विनाश सारे दुखों को जीत लेता है। अर्थात

सब्ब दानं धम्मदानं जिनाति, सब्बं रसं धम्म रसो जनाति।

सब्बं रति धम्म रसो जिनाति, तण्हक्खयों सब्बं दुक्खं जिनाति।।[25]

संसार से पार उतरने की कोशिश जो व्यक्ति दान नहीं करता या चाहता है उस व्यक्ति को भोग नाश कर देता है। भोग तृष्णा में पडकर दुर्बुद्धि पराये ;दूसरे दूषित व्यक्तियों की तरह अपने को ही नाश कर लेता है। दान फल के बारे में माघ नाम का व्यक्ति बुद्ध से पूछता है– जो याचना करने वाले योग्य दानपति गृहस्थ पुण्य की कामना से यज्ञ करता है, जो दूसरे को अन्न और पेय देता है – हे बुद्ध यज्ञसम्पदा (दान फल के बारे) बतलायें – बुद्ध कहते है – जो व्यक्ति दान दो, दान देते वक्त अहंकार से दूर सब के प्रति मन को प्रशन्न रखना चाहिए।

दान ही दायक का आलम्बन है, इसमें प्रतिष्ठित हो दायक के मन का द्वेष दूर हो जाता है। वह राग, द्वेष, मोह से दूर असीम प्रेम की भावना (अप्रमाण मैत्री चित्त की भावना) करते हुए रात–दिन सदा अप्रमादि रह कर सभी दिशाओं में असीम मैत्रीभाव फैलाता है –

''सो वीतरागो पविनेय्य दोसं, मेत्रं चित्तं भावयं अप्पमाणं।

रति दिवं सततं अप्प मत्रो, सब्बा दिसा फरते अप्पमत्र्त्र।[26]''

ऐसा करने पर जो तीन प्रकार का दान – दक्षिणा देता है। दक्षिणा पाने वालों को प्रशन्न रखता है, ऐसा दान वाला दाता दान देकर ब्रहम् लोक में जन्म लेता है।[27]ऐसी ही धारणा धम्मपद[28] में भी कहा गया है

दान के पांच महात्म्य –

---

[24] वही , 358/25

26 सुत्तनिपात,3/5/21

[25] धम्मपद,तण्हावग्गों,356/22

[27] वही,3/5/23

[28] धम्मपद,क्रोधवग्गो,17/3–4

एक समय भगवान बुद्ध वैशाली के महावन में विहार कर रहे थे, वहीं पर सिहंसेनापति भगवान बुद्ध से दान फल के बारे में जिज्ञासा प्रकट किया कि दान प्रत्यक्ष फल कैसा होता है, कृप्या मुझे बताएं।[29] बुद्ध कहते है कि हे सिहंसेनापति जो दाता दानपति दान देनेवाला श्रद्धापूर्वक दान करता है वह मनुष्यों के बीच प्रिय एवं हितकारी हो जाता है, ऐसे अनेक मनुष्यों का आदार प्रेम प्राप्त कर लेना दान का प्रत्यक्ष फल है। दाता द्वारा दान देते समय अनेक सत्पुरूष दान प्राप्त करने के लिए आता है, जिसे दाता को मिलने का सौभाग्य प्राप्त होता है। (दायकं दानपति सन्तो सप्पुरिसा भजन्ति)। दान देते वक्त उस दाता, दानपति का यश चारों ओर फैलता है, चारों ओर शुभ का फैलना तृतीय दान फल होता है (दायकस्स दानपतिनो कल्याणो कितिसद्धो अब्भुगच्छति।) दान देने के लिए दानपति जिस जगह पर, जिस सभा में जाता है भले वह क्षत्रिय, ब्राहम्ण, गृहपति की सभा हो या कोई श्रवण – ब्राहम्ण की सभा हो, इन सभी सभा में वैभव के साथ आदर के साथ जाता है, ऐसा दाता का चौथा फल प्राप्त होता है। सिहंसेनापति दान देने वाला दाता, दानपति दान देकर, देहपात (मरने के बाद) मरानान्तर, सुगति पथ पर (कामस्स भेदा परं मरणा सुगति सग्गं लोकं उपपत्र्त्रति इदंपि सम्पाशयिकं दानफलंति।) यह पांचवा फल प्राप्ति होता है।[30]

अतः ज्ञानी, अलोभी, प्रज्ञावान व्यक्ति निरन्तर दान करते है तथा वे दुसरों का दुख दूर करने वाले, दुसरों का सुख चाहने वाले तथा लोभ में दूर (निरालिप्त) होते है, इस प्रकार वे कुशल कर्म करते हुए पापों से छुट्कारा पा कर देवस्वरूप बन जाता है, ऐसे तथागत के उपासक सुगति को प्राप्त कर स्वर्ग को प्राप्त करता है।

इस प्रकार उपरोक्त कुशल कर्मो को करते हुए व्यक्ति दान के पांच महात्मय को प्राप्त करता है, बुद्ध कहते है कि ये पांच महात्म्य है – दानी अनेक जनों का प्रियपात्र होता है। स्नेह ही होता है, सत्पुरूष उसकी प्रशंसा करते है। चारों तरफ उसका यश, गुणगान फैलता है, मुख्यरूप से वह गृहस्थ धर्मो का पालन करता है। मरने के बाद निर्विकार चित्त होकर सुगति, निर्वाण, पथगामी, परिनिब्बाण को प्राप्त होता है।[31]

बौद्ध धर्म के अनुसार दान देने वाला दाता को दान लेने वाला आर्शीवाद देता है। वह बौद्ध धर्म में पांच प्रकार का माना गया है –

1 आयु

---

[29] अंगुत्तर निकाय,पंचक निकाय – सिहंसेनापति सुत्तं,5/4

[30] वही,सिहंसेनापति सुत्तं,5/4/6

[31] वही, 5/5

2 वर्ण

3 सुख

4 बल

5 तीक्ष्ण बुद्धि।

दान और दानग्राही के बारे में बताया गया है कि – आयु प्रदान करता हुआ स्वयं भी लौकिक आयु का प्रतिभागी बन जाता है। वर्ण प्रकट करता हुआ स्वयं दिव्य एवं लौकिक वर्ण का बन जाता है। सुख का दान करता हुआ दिव्य और लौकिक सुख प्राप्त करता है। बल का दान करता हुआ स्वयं भी लौकिक बल प्राप्त करता है। बुद्धि दान करता हुआ स्वयं दिव्य एवं लौकिक तीव्रबुद्धि ज्ञान प्राप्त करता है।[32] गुरुजन–सेवा के समान दानशीलता को भी बुद्धकालीन समाज में धर्म का प्रमुख अंग माना गया था। अनेक जातकों में दानशीलता की महत्ता के गान मिलते हैं। वस्तुतः अति प्राचीन काल से दान को धर्म का महत्वपूर्ण अंग माना गया है ।

[32] अंगुत्तर निकाय, 5/7 (भोजनसूत्र, सुप्रभाषा सूत्र,); सुदत्त सूत्र, 4/6/7